International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 169-171

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 169-171
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-03-2023
Accepted: 28-04-2023

Dr. Akhilesh Kumar Tripathi
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Amity School of Liberal Arts, Amity University Haryana, India

Corresponding Author:
Dr. Akhilesh Kumar Tripathi
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Amity School of Liberal Arts, Amity University Haryana, India

ऋग्वेद में काव्य सौन्दर्य विधायक तत्व

डा. अखिलेश कुमार त्रिपाठी

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति वेदों से हुई है। वेद काव्य है अथवा वेद में काव्यतत्व भी है यह विमर्श योग्य है। अस्तु वेद एवं काव्य के अन्तर्सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता है। वेद में काव्य के शब्द शक्ति, छन्द, अलंकार, रस आदि तत्वों का बहुशः प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। प्रकृत शोध कार्य में इन्हीं तत्वों का अनुशील प्रस्तुत है।

वेद का शाब्दिक अर्थ है 'ज्ञान'। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। वेद से सम्बद्ध साहित्य को वैदिक साहित्य कहा जाता है। साहित्य का शाब्दिक अर्थ है-शब्द और अर्थ का परस्पर विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध-'सहितयोर्भावः साहित्यम्' यह सम्बन्ध शाश्वत है। कालान्तर में साहित्य शब्द काव्य के नाम से भी कहा जाने लगा। अनन्ता वै वेदा:[1] यह ब्राह्मण वचन वेदज्ञान की अनन्तता के मर्म को प्रदर्शित करता है। मनु ने भी कहा है-'सर्वं वेदात्प्रसिध्यति' वेद से सब विद्याओं की सिद्धि होती है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्यिक ग्रंथ है। इसमें विभिन्न देवताओं की स्तुतियों का संग्रह है। धार्मिक परम्परा से सम्बन्ध होने के कारण प्राचीन काल में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से इसका अध्ययन किया गया। वेदों में बहुत से ऐसे तत्त्व हैं जिन्हें काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के सुंदर उदाहरण के रूप में गृहीत किया जा सकता है।

साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से वैदिक वांग्मय की गुणवत्ता असन्दिग्ध है। डॉ. वी. राघवन् ने कहा है-कविता के जो बीज ऋग्वेद में बोये गए हैं वे ही पुष्प और कलियों के रूप में बाद के संस्कृत के लौकिक साहित्य में मिलते हैं । वाल्मीकि,व्यास,कालिदास,भवभूति आदि संस्कृत भाषा के कवियों की कविता वैदिक कविता से निश्चत रूप से प्रभावित है। वेद स्वयं काव्य रूप है और उसमें काव्य के सम्पूर्ण तत्त्व पाये जाते हैं । काव्य-सौंदर्य के आधायक रस, अलंकार, ध्वनि, छन्द, भाव, गुण, रीति आदि सभी तत्त्व मूलरूप से वेद में प्राप्त होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को वेद से प्रतिपादित किया है। नाट्यशास्त्र की वैदिक उपजीव्यता को उद्घाटित करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि-

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।

इस पद्य के अनुसार ऋग्वेद से संवादों का सामवेद से गीतों का, यजुर्वेद से अभिनयों का, अथर्ववेद से रसों का ग्रहण कर नाट्य-रचना सम्पन्न हुई। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि जिस वेद से जिस तत्त्व का ग्रहण किया है अन्य वेद में उस तत्त्व की सत्ता नहीं है। अभिप्राय यह है कि अथर्ववेद से रसों को ग्रहण किया गया, अथर्ववेद में बहुत से मंत्र ऋग्वेदीय हैं । इसलिए ऋग्वेद में भी रस-प्रसंग होने चाहिए । एक अन्य भी दृष्टि से वेद काव्य स्वरुप ही है । वह है प्रयोजन की दृष्टि,कतिपय मंत्रों पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि संभवत: उनकी रचना के प्रयोजन वही हैं जो आलंकारिकों ने काव्य के बताये हैं। 'शिवेतरक्षतये' वैदिक कविता का मुख्य प्रयोजन है उसका कल्याणकारी होना। 'शुंभुवं मन्तम् 'वोचेम शन्तमं हृदे,आदि ऋचाओं से इस प्रयोजन की ओर संकेत किया गया है । कल्याणकारिता के भाव का द्योतन-'अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि' । वैदिक साहित्य का एक और प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति कराना है। वेद केवल कल्याणकारी ही नहीं आह्लादकारी भी है।

[1] तैत्तरीय ब्रह्मण7 .8

'हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे 'स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतम:'। आलंकारिकों ने वाङ्मय का प्रभुसम्मित,सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित रूप में त्रिविध विभाजन किया है । वेद के सुहृत्सम्मितत्व के विषय में उपनिषद की एक प्रसिद्ध ऋचा उद्धरणीय है।[2]

वेदमन्त्रों में साहित्यिक निधि का काव्यात्मक अध्ययन करने के प्रति पाश्चात्य तथा पौरस्त्य विद्वानों ने तत्परता दिखाई है | वैदिक काव्य अधिकांशतया मुक्तकात्मक हैं --इतिवृत्त से रहित, किन्तु आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' एक वाक्य भी यदि रस युक्त है तो उसे काव्य माना जाना चाहिए । वैदिक वांगमय में अनेक ऐसे सरस प्रसङ्ग हैं, जिनमें रस-निष्पत्ति अनुभव होती है।

रस-निष्पत्ति और भाव

कविता कवि के भावों की अभिव्यक्ति है। भावाक्षिप्त हृदय की अभिव्यक्ति ही कविता का रूप धारण कर लेती है। ऋग्वेद के उषस् सूक्त में यत्र-तत्र रति भाव की झलक देखने को मिलती है। ऋषियों ने उषा को एक सुंदर स्त्री का रूप देकर अपने कल्पनालोक में खड़ा किया है । उषा एक सुंदरी कन्या के रूप में दिखाई देती है जो धीरे-धीरे मुस्कुराती हुई सूर्य के निकट जाती है । वह श्वेतवसन चरण किये हुये अपनी शरीर[3] कान्ति से अंधकार को मिटाती हुई एक युवती रूप में दिखाई पड़ती है ।[4]

श्रृंगार को संभोग और विप्रलम्भ रूप में द्विविध माना जाता है। अथर्ववेद में रतिभाव के उद्दीपक तत्त्वों का वर्णन हुआ है यथा- देवता लोग काम को भेजे जिससे यह कामार्ता स्त्री, मेरा प्रेमी सदैव मेरा स्मरण करता रहे, इस प्रकार कामना करती हुई सदैव तत्पर रहे और मेरा ध्यान करती रहे।

ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी संवाद में विप्रलम्भ श्रृंगार के हृदयद्रावक प्रसंग सन्निहित हैं। पुरुरवा-उर्वशी के प्रणय-प्रसंग की विडम्बना द्रष्टव्य है वे देवता जो युद्ध के समय अपने प्रतिद्वन्द्वी से अपनी रक्षा के लिए पुरुरवा की शरण में आते थे,उर्वशी उन्हीं देवताओं के पास जाना चाहती है, पुरुरवा को अकेले छोड़कर, इस निष्ठुर तथ्य को स्वयं उर्वशी के मुख से सुनकर पुरुरवा के हृदय में ग्लानि, घृणा, अवसाद, क्रोध और शोक कितनी ही भावनाएं एक साथ उठी होंगी । कोई सहृदय ही इसका अनुमान लगा सकता है। श्रृंगारकी भांति वेद में अन्य रसों की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इन्द्र की वीरता का वर्णन हुआ है । राष्ट्राभिवर्धन सूक्त में इन्द्र सूक्त में राष्ट्र-प्रेम के भाव का भी स्फुटन हुआ है। अथर्ववेद के पर्जन्य सूक्त (4,15,1,7,8) की कतिपय ऋचाओं में भय के भाव का चित्रण किया गया है । कहीं-कहीं मद आदि भावों का भी वेद में कुशलता से वर्णन हुआ है । एक सूक्त में सोमपान से मदोन्मत्त इन्द्र का इतना स्वाभाविक वर्णन हुआ है मानो ऋषि नशे में चूर किसी व्यक्ति का वर्णन कर रहा हो । इन्द्र कहते हैं कि मैंने अत्यधिक सोम पी लिया है। जिस प्रकार वायु वृक्षों को कंपाती है,उसी प्रकार सोम मुझे कंपा रहा है। इन काव्यप्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर स्वत: बोध होता है कि वेद ही इनका उद्गम है। यहीं से ये सब काव्यपरम्परायें उद्भूत होकर संस्कृतकाव्य तक चली आई हैं।

शब्द-शक्तियाँ

वैदिक काव्य को शास्त्रकारों ने सामान्यतः शब्द प्रधान माना है- तदनुसार इसमें अभिधा का प्राधान्य हो जाता है। यहाँ वैदिक काव्य में अभिधा का विशेष महत्त्व नहीं होता, इसलिए ऋषि-कवि ने वेद में लक्षणा का स्थान-स्थान पर आश्रय लिया है। अन्य ग्रंथों में विद्यमान लाक्षणिक प्रवृत्ति को निरुक्तकार ने भी वर्णित किया है- 'बहुभक्तिवादीनि हि ब्रह्माणानि' लक्षणा से ओत-प्रोत वैदिक उदाहरण इस प्रकार है- 'स्तेनं मन: श्रुणोत ग्रावाण: इत्यादि। अभिधा से इनकी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। 'पत्थर सुनें' यह कथन उन्मत्त सदृश लगता है। लक्षणा का आश्रय लेने पर इसकी व्याख्या ली जाएगी जिसे पत्थर भी तन्मयता से सुनते हैं फिर विद्वानों और सहृदयों की बात ही क्या।

साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों में लक्षणा-निरुपण के ग्रंथों में आचार्यो ने 'सिंह माणवक:, 'गौर्वाहीक: 'आदि उदाहरणों की भाँति 'यजमान प्रस्तर:' 'आदित्यों यूप:' इत्यादि वैदिक उदाहरण भी दिये हैं।वैदिक काव्य में व्यंजना के अस्तित्व को मीमांसक मान्यता नहीं देते हैं तथापि व्यंजना के छिटपुट उदाहरण मिल जाते हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनन्नन्यो अभिचाकशीति ||

अलंकार-सौष्ठव

काव्य-शरीर शब्दार्थमय है तो उसमें सौंदर्यातिशय लाने के लिए अलंकारों की आवश्यकता होती है जो वस्तुतः दो प्रकार के अलंकार हैं-- शब्दालंकार और अर्थालंकार । कभी शब्द में रमणीयता लाने के लिए उत्सुक रहता है तो कभी अर्थ में । वेदों में अनुप्रसा की छटा दर्शनीय है 'विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्थाभिदासत' इसी प्रकार वेदों में यमक का भी दर्शन होता है। यथा- अधशंसदु: शंसाभ्यां करेणानुकरेण च । शब्दगत चारुता का दर्शन शब्दालंकारों में होता है | अर्थगत चारुता का अर्थालंकारों में होता है । कवि अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन-नवीन अर्थों की प्रतीत कराता है। अर्थालंकारों में उपमा अग्रगण्य है। वेद के संदर्भ में उपमा का सर्वप्रथम विवेचन यास्क ने निरुक्त में किया है। तदनुसार उपमावाचक निपात चार हैं- इव,न, चित् और नु निरुक्तकार का अभिमत है- उपमा में अधिक गुण वाले अथवा अत्यंत प्रख्यात उपमान के साथ न्यून गुण वाले अथवा अल्प प्रसिद्ध उपमेय का सादृश्य प्रदर्शित किया जाता है 'ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयासं वा अप्रख्यातं वा उपमिमीते'। ऋग्वेद के उषस सूक्त में उषस की समानता रुपगर्बिता लावण्यमयी नारी खड़ी होकर स्नान करने वाली युवती तथा सुंदर स्वभाव वाली प्रिया के साथ प्रदर्शित है । ब्राह्मण ग्रंथों में रूपक सृष्टि का आकर्षण भी दृष्टिगोचर होता है। वेदों में उत्प्रेक्षा,अतिशयोक्ति, समसोक्ति, परिकर[5],विभावना[6].स्वभावोक्ति[7] आदि अलंकारों का भी प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है।

शिक्षा[8] वेद पुरुष के पादरूप में छंद को स्वीकार करता है। छंद की महत्ता और व्यापकता इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि वेद में कोई भी मंत्र बिना छंद के नहीं रह सकता। ऋग्वेद में सभी छंदों में त्रिष्टुप् की संख्या अधिक है। अथर्ववेद की एक ऋचा में सातों छंदों का क्रम से वर्णन हुआ है।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुपबृहतीपंक्तिस्त्रिष्टुप् जगत्यै ।[9]

वस्तुतः गायत्री ही प्रथम छंद है, अत: बैदिकवांगय में इसकी विशेष प्रशंसा की गई है।

'गायत्री गायते: स्तुतिकर्मण:' 'गायतो मुखादुदपतदिति'[10]अथर्वेवेद में इसे वेदमाता कहा है। इन्द्र की स्तुतियाँ प्राय: गायत्री छंद में हैं- इन्द्र त्वा वृषभं बयं सते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ।[11] इसी

[2] ऋग्वेद10.71.6
[3] ऋग्वेद1,19.3
[5] अथर्ववेद 5.20.5
[6] तथैव
[7] अथर्ववेद 49.2.
[8] पाणिनीय शिक्षा 4..42
[9] अथर्ववेद 6.2.
[10] निरुतक 7.2.
[11] ऋग्वेद 3.40.

प्रकार उष्णिक्, अनुष्टप्,बृहती इत्यादि छंद भी प्राप्त होते हैं। पादवृत्ति और अक्षर वृत्ति जन्य काव्य-लालित्य वैदिक साहित्य में पादवृत्ति और अक्षर वृत्तिजन्य है, उसे समझने के लिए पूर्वापर सूक्तों की अपेक्षा गीतिकाव्य के लिए आवश्यक सभी तत्त्व उन सूक्तों में नहीं होते परंतु कुछ सूक्क्त ऐसे हैं जो गीतिकाव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं । इनमें भावों की कोमलता,संगीतात्मक सौंदर्य कुछ दर्शनीय हैं ।द्युलोक में सुंदरी उषा के अवभासित स्वरूप उसके नित-नूतनपन तथा लोक-विमोहिनी उसकी घटा से ऋषियों के चित्र को आकृष्ट किया। ऋषि हृदय के संख्यातीत उद्गारों को उसी भाव से प्रकट करते थे, जिस प्रकार से अनुभव करते थे। कभी ऋषि उसे द्यौ की प्रिया, कभी द्यौ की दुहिता रूप में देखते थे।भावभिव्यक्ति का स्वभाविक प्रवाह,विषयानुसार भाषा आदि दृष्टिकोण से यह गीतिकाव्य का नमूना हो सकती है। इसी प्रकार प्राणसूक्त[12] कामसूक्त[13] आदि में गीतिकाव्य का पूर्वरूप देखा जा सकता है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध गीतिकाव्य मेघदूत, अमरूक शतक, श्रृंगारशतक आदि का मूल वेदों में है।

वेद का मुख्य विषय देवस्तुति है। स्तोत्रकाव्य का पूर्णरूप वेद में देखने को मिलता है। वेद के संवादात्मक सूक्तों से परंपरा आरंभ हुई। अगस्त्य-इन्द्र संवाद विश्वमित्र-नदी संवाद, यम-यभी संवाद और सरमा-पणि संवाद नाट्यात्मक हैं।

निष्कर्षतः स्पष्ट ही है कि वैदिक काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अत्यंत मनोरम है। वैदिक ऋषि में दैवी दर्शन शक्ति तो है ही, प्रभावपूर्ण वर्णनाशक्ति भी है । वैदिक काव्य की उदात्त स्थिति स्वतः प्रतिध्वनित है । यह वस्तुत: देवता का काव्य है जो न पुराना पड़ता है और न विनष्ट होता है-'पश्म देवस्य काव्यं यो न ममार न जीर्यति' काव्य के रूप में वैदिक काव्य की रमणीयता अपने संदर्भो में अनुघटित ही है। संभवत: राजशेखर ने अलंकार नामक वेदांग का प्रस्ताव भी रखा था- उपकारकत्वात् अलंकार सप्तममंगम् इति याथावरीय: ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगति: । सेनापति हरीश्वर का संपूर्ण चरित्र पण्डित के इस कथन से स्पष्ट होता है-

पराक्रमोत्साह-मति-प्रताप-सैशील्य-माधुर्य-नायनयेषु ।
गाम्भीर्य-चातुर्थ-सुवीर्य धैर्य हरीश्वरात् कोडम्भधिकोउस्ति लोके।।

संस्कृत के प्रमुख एकांकी रूपक संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य में श्रव्य एवं दृश्य इन दोनों रूपों का समावेश होता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादूवत्त्यनश्नन्न्यो अभि चाकशीति।।

निष्कर्षत: वैदिक संस्कृत साहित्य धारा देवनदी की भांति सतत गतिशील रही है। जो ऋग्वैदिक काल से प्रावाहित होती हुई काव्यानुशीलन आचार्यों तक प्रवहमान रही और काव्यशात्रीय लक्षण ग्रंथों के निर्माण की दिशा प्रदान करती रही | कालान्तर में काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा उद्घाटित शात्रीय लक्षण रस,छन्द,अलंकार,गुण ,रीती, शब्द शक्ति प्रभृति हमें ऋग्वेद आदि वैदिक शात्रो में भी देखने को मिलते हैं |

सन्दर्भ सूची

1. अथर्ववेद, सम्पादक, विश्वनाथ शास्त्री, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी,1997
2. ऋग्वेद, सम्पादक, जियालाल कम्बोज विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2012
3. काव्यप्रकाश, आचार्य, विश्वेश्वर,डॉ॰ नगेंद्र(संपा॰)ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी,1960
4. तैत्तरीय ब्राह्मण, सम्पादक, चुन्नी लाल शुक्ल, साहित्य भण्डार मेरठ, 1976
5. नाट्यशास्त्र,सम्पादक, रेवाप्रसाद द्विवेदी, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला, 2005
6. निरुक्त, व्याख्याकार, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य भण्डार, मेरठ,1996
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय,उत्तरप्रदेश संस्कृत
8. संस्थान,लखनऊ,1997SA

[12] अथर्ववेद 6.2.

[13] ऋग्वेद 4.3.0